Research Papers

शंकर व रामानुज मत में अविद्या का आश्रय

सुरेन्द्र कुमार
संस्कृत–पालि–प्राकृत–विभाग,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय,
कुरुक्षेत्र।

प्रस्तावना :–

भगवत्पाद शंकराचार्य ने 8 वीं शताब्दी में बादरायण कृत ब्रह्मसूत्र पर शारीरकभाष्य की रचना करके अद्वैत मत को प्रतिष्ठापित किया जो स्वयं में पूर्ण एवं स्पष्टरूपेण ब्रह्म सूत्र के तात्पर्य व आशय को गूढ़तम रहस्यों को उद्घाटित करते हुए लोक कल्याण के प्रयोजन की पूर्ति करते हुए इस सांसारिक प्रप?च को समझाने का पूर्ण, सफल व सार्थक प्रयास है। आचार्य शंकर ने जगत् के जटिलतम प्रश्न का उत्तर देने के लिए अविद्या या माया तत्त्व की कल्पना की है। शंकर मतानुसार अविद्या रूप उपाधि के कारण उससे युक्त होकर शुद्ध चैतन्य ही जीव की संज्ञा पाता है। परन्तु परवर्ती आचार्य रामानुज ने माया/ अविद्या का आश्रय ही अनुपपन्न सिद्ध करने का प्रयास किया है। केवल शंकर या रामानुज मत में ही नहीं अपितु भारतीय दर्शन के लगभग सभी सम्प्रदायों में अविद्या या माया के आश्रय के प्रसंग में अनेक प्रकार के मत दृष्टिगोचर होते हैं। आश्रय का यही प्रश्न यहाँ विचारणीय है।

शंकर मतानुसार अविद्या के कारण ही समस्त जगत् के पदार्थों की उद्भावना प्रकट हो जाती है। ब्रह्म ही अविद्या से ग्रस्त होकर अपने पारमार्थिक स्वरूप को विस्मृत करके स्वयं को उससे भिन्न जीव समझने लगता है।1 पारमार्थिक रूप से ब्रह्म होते हुए भी वह जीव के रूप में जागतिक व्यवहार से युक्त हो जाता है। जबकि वह ब्रह्म से भिन्न नहीं होता। 'जीवो ब्रह्मैव नापरः'2 'जीव एव सदा ब्रह्म'3 'सः जीवः केवलः शिवः'4 इत्यादि श्रुतियाँ यहाँ प्रमाण हैं। अन्य अनेक स्थलों पर भी शंकर व शांकर वेदान्तियों ने इसी तथ्य को प्रस्तुत व पुश्ट किया है।

विशिष्टाद्वैत मत –

परन्तु श्रीभाष्यकार रामानुज ने शांकर मत को युक्तिपूर्वक ध्वस्त करने के लिए शांकर सम्मत जगत् के मूल कारण अविद्या या माया को ही अपने प्रहार का लक्ष्य बनाया है। श्रीभाष्य में रामानुज पूछते हैं – 'सा हि किमाश्रित्य भ्रमं जनयति5 अर्थात् शंकर द्वारा वर्णित व स्वीकृत एक, निर्गुण, निर्विशेष, नित्यशुद्धमुक्तस्वभाव, स्वयंप्रकाशमान ब्रह्म को जगत् के रूप में प्रतिभासित करने वाली तथाकथित शक्ति (अविद्या) का आश्रय कहाँ है?

जीवाश्रयत्व में दोष – रामानुज अपने भाश्य में प्रश्न उपस्थित करके संभावित उत्तरों को निरस्त करते हुए प्रथमतः अविद्या के जीवाश्रयत्व का निशेध करते हैं –
' न तावत् जीवमाश्रित्य, अविद्यापरिकल्पत्वात् जीवभावस्य'6 अर्थात् अविद्या का आश्रय जीव नहीं हो सकता क्योंकि जीव की सत्ता तो अविद्या के कारण ही होती है। कारण कार्य में निवास नहीं कर सकता अपितु कारण तो कार्य से भिन्न आश्रय वाला ही हो सकता है। अद्वैतानुसार जीव की सत्ता तो ब्रह्म के अविद्या द्वारा ग्रस्त होने पर ही सिद्ध होती है। संसार में ऐसा कोई दृष्टान्त उपलब्ध नहीं जहाँ कोई उत्पन्न होने से पूर्व ही अपने से उत्पन्न कार्य में आश्रय ले सके। जैसे अग्नि से उत्पाद्य धूम कदापि अग्नि का कारण नहीं होता, वैसे ही उपर्युक्त कल्पना उचित नहीं है। अतः जीव को आश्रय बनाकर अविद्या अपना कार्य सम्पादित नहीं कर सकती।

अद्वैत–मत – आश्रय के संदर्भ में अद्वैत–मत में हम पाते हैं कि वाचस्पति मिश्र ने अविद्या का आश्रय जीव को स्वीकार किया है – 'नाविद्या ब्रह्माश्रया किन्तु जीवे'7 समन्वयाधिकरण के भाष्य की टीका कहती है कि ज्ञानात्मक होने से ब्रह्म को अविद्या का आश्रय नहीं माना जा सकता। मण्डन मिश्र का ही समर्थन करते हुए वाचस्पति कहते हैं कि अनादि अविद्या के अवच्छेद से जीवभाव को प्राप्त होकर परमात्मा भेदरूप में अवभासित होता है।

अनाद्यविद्योपहित जीवों में ही अविद्या विद्यमान रहती है, न कि निरूपहित ब्रह्म में।8

अद्वैत–मत खण्डन – मण्डनमिश्र ने प्रत्येक जीव में भिन्न भिन्न अविद्याओं का आश्रयत्व स्वीकार किया है तथा वाचस्पति मिश्र ने उन्हीं का अनुकरण करते हुए जीवाश्रयत्व स्वीकार किया है।

परन्तु यदि तथाकथित जीव को आश्रय स्वीकार कर भी लिया जाए तो उस व्यक्तिगत जीव की उपस्थिति अविद्या से पूर्व माननी पडेगी, तथा उस जीव की कारणभूत अन्य पूर्ववर्ती अविद्या स्वीकार करते हुए अन्य जीव की कल्पना आवश्यक होगी। अतः इस प्रकार स्वीकार करने पर तो अन्योन्याश्रय व अनवस्था दोश प्रसक्ति

Indian Streams Reserach Journal
Vol.2,Issue.III/April; 2012

होगी।

विवरण प्रस्थान के चिन्तकों का भी यही मन्तव्य है कि अविद्या का आश्रय जीव को मानना दोषपूर्ण है। सर्वज्ञात्ममुनि के अनुसार अविद्या की उपस्थिति के बिना जीव की सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती। 'अज्ञानात्मक वस्तुनाश्रयतयाऽज्ञानस्य संभाव्यते।9

सर्वज्ञात्ममुनि स्पष्टरूपेण यह उद्घोषणा करते हैं कि जीव और ईश्वर भेद का अवभासक कारणीभूत केवल अविद्या या अज्ञान है जिसकी पूर्वसत्ता आवश्यक रूप से स्वीकरणीय है।10

ब्रह्माश्रयत्व में दोष – विवरणकार ने अविद्या का आश्रय जीव को न मानकर ब्रह्म को स्वीकार किया है। 'विवरणप्रस्थाने त्वविद्या ब्रह्माश्रया'11 अर्थात् अन्य विवरणप्रस्थानियों ने भी जीव को आश्रय न मानकर अद्वैत–मत में स्वीकृत नित्य, शुद्ध, बद्धमुक्तस्वभाव, स्वयंप्रकाश, अनन्त, सत्य ब्रह्म को अविद्या का आश्रय स्वीकार किया है।

उनकी इसी संभावना को अनौचित्यपूर्ण सिद्ध करते हुए रामानुज श्रीभाष्य में लिखते हैं – 'नाऽपि ब्रह्माश्रित्य, तस्य प्रकाशज्ञानत्वेन अविद्याविरोधित्वात्'12 अर्थात् ब्रह्म ज्ञानस्वरूप एवं विद्यात्मक है अतः अविद्या का प्रत्यनीक एवं विरूद्ध है। अर्थात् जैसे अन्धकार के विरोधी प्रकाश में अन्धकार का आश्रयत्व स्वीकार नहीं किया जा सकता वैसे ही स्वयंप्रकाश ब्रह्म में अविद्या का आश्रयत्व कैसे स्वीकरणीय हो सकता है ?अद्वैत–मत में अविद्या का बाध ज्ञान द्वारा होता है, फिर वह ज्ञानस्वरूप ब्रह्म को आश्रय कैसे बना सकती है ?ब्रह्म के ज्ञानात्मक व स्वप्रकाशात्मक होने को सभी अद्वैतवेदान्तियों ने मुक्त कण्ठ से अगीकार किया है। हर्श भी इसी मन्तव्य को पुष्ट करते हैं –

'विज्ञानं तावत् स्वप्रकाशं स्वत एव सिद्धस्वरूपम्।13

चित्सुखाचार्य ने भी स्वरचित टीका में ब्रह्म का स्वप्रकाशत्व प्रतिपादित एवं समर्थित किया है –

प्रमाणनखनिर्भिन्न महामोहमरारये।
नमस्कुर्मो नृसिंहाय स्वप्रकाशचिदात्मने।।14

इसी प्रसंग में तत्त्वप्रदीपिकाकार ने भी लिखा है कि ब्रह्म का स्वभाव स्वप्रकाशत्व, चित्रूपत्वयुक्त है।

'स्वप्रकाशः चित् सैवात्मा यस्य' 'स्वप्रकाशचिद्रूपश्चासावात्मा'15

कठोपनिशद् में नचिकेता को उपदेश देते हुए कहा गया है कि ब्रह्म ज्योतिर्मय है, सूर्य अग्नि की भाँति मात्र उष्ण प्रकाश वाले नहीं। अपितु दिव्य, निर्मल एवं शान्तप्रकाशस्वरूप है।16 ब्रह्म के धर्म के रूप में अद्वितीयत्व भी स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि ब्रह्म के निर्गुण होने से उसमें अद्वितीयत्वरूप धर्म नहीं हो सकता। यदि अद्वितीयत्व धर्म मान लें तो ब्रह्मस्वरूप के समान होने के कारण सद्वितीयत्वरूप प्रप?च की उत्पत्ति नहीं हो सकती। अतः रामानुज की दृश्टि में ब्रह्म में अविद्या का आश्रयत्व सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि ब्रह्म ज्ञानस्वरूप है तथा अज्ञानरूप अविद्या का सतत विरोधी ही है।

शंकर दृष्टि से विशिष्टाद्वैत मत पर विचार –

आचार्य रामानुज ने अविद्या के आश्रय के विषय में श्रीभाष्य में प्रश्नचि्‌ लगाया है तथा अपने कपोलकल्पित तर्क द्वारा अनुपपत्ति प्रदर्शन किया है। इस प्रसंग में रामानुज ने जीव तथा ब्रह्म के साथ अविद्या के सम्बन्ध को अनुचित तरीके से व्याख्यायित करके अनुपपन्न व भ्रमित करने का असफल प्रयास किया है।

शांकर दृष्टि से यदि विचार किया जाए तो रामानुज द्वारा आक्षिप्त तर्क उपयुक्त प्रतीत नहीं होते क्योंकि प्रथमतः तो रामानुज अविद्या को सत् पदार्थ के समान स्वभाव वाली मानकर उसका आश्रय अन्वेशण कर रहे हैं, जबकि शंकर ने अविद्या को कभी सत् स्वीकार नहीं किया। जिस प्रकार लकड़ी में अग्नि विद्यमान रहती है उसी प्रकार उपाधियों में ब्रह्म व चैतन्य का भाव निगूढ़ रहता है। रामानुज के मत में एक यह दोष दृष्टिगोचर होता है कि रामानुज जीव तथा ब्रह्म की पृथक् पृथक् सत्ता स्वीकार करते हैं। शंकर मत में ब्रह्म तथा जीव की भेद अवस्था का निराकरण इस तर्क से हो सकता है कि उपाधि के कारण ही ब्रह्म तथा जीव की भेद व्यवस्था संभव है, पारमार्थिक रूप में तो ब्रह्म तथा जीव में ऐक्य ही स्वीकार्य है। अविद्योपाधि के कारण ही यह भेद–भ्रम होता है, परमार्थदृष्टि से यह अभेद ही है। श्रुति यहाँ प्रमाण है –

'जीवो ब्रह्मैव नापरः।'

रामानुज की यह भूल है कि जीव– ब्रह्म के अतात्त्विक और माया के कारण होने वाले भेद को तात्त्विक मान लिया। वास्तव में जीव ब्रह्म ही है, वह तद्भिन्न कोई वस्तु नहीं है। माया की उपाधि से उसी प्रकार ब्रह्म से पृथक् प्रतीत होता है जैसे जल से बना हुआ बर्फ का टुकड़ा। बर्फ का टुकड़ा जल का रूपान्तर मात्र है न कि जलभिन्न वस्तु। कुछ रासायनिक प्रक्रिया व ठण्ड के कारण जल ही बर्फ बन गया। वही कुछ ताप लगने पर और रासायनिक प्रक्रिया समाप्त होने पर पुनः जल के रूप में दृष्टिगोचर होने लगता है। वैसे ही ब्रह्म और जीव दोनों एक ही हैं परन्तु उपाधि के कारण ये पृथक् दिखाई देते हैं। इन दोनों के भेद का कारण तत्त्वज्ञान से निवृत्त होने वाली अविद्या या माया है।

'शुद्धाद्वयब्रह्मविबोधनाष्या
सर्पभ्रमो रज्जुविवेकिता यथा।।17

रामानुज द्वारा अविद्या तथा ब्रह्म का प्रदर्शित काल्पनिक विरोध भी उचित नहीं है क्योंकि ज्ञान का वृत्ति से युक्त अज्ञान से विरोध हो सकता है न कि सर्वाधिश्ठानभूत ज्ञान से। श्रुतिप्रमाण यहाँ उपलब्ध है –

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'18
'नित्यं विज्ञानानन्दं ब्रह्म।'19

आचार्य शंकर ने अथर्वसंहिता का अवलम्बन करते हुए इस तथ्य को अनेकबार यत्र तत्र प्रतिपादित किया है। यह सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म ही है, ऐसा अतिश्रेश्ठ अथर्वश्रुति कहती है। इसलिए यह विश्व ब्रह्मभाव ही है क्योंकि अधिश्ठान से आरोपित वस्तु की पृथक् सत्ता नहीं हो जाती।

'ब्रह्मैवेदं विश्वमित्येव वाणी,
श्रौती ब्रूतेऽथर्वनिष्ठां वरिष्ठा।
तस्मादेतद् ब्रह्ममात्रं हि विश्वं,
नाधिष्ठानाद् भिन्नतारोपितस्य।।20

वार्तिककार ने अविद्या के आश्रय तथा विषय उभय का प्रत्याख्यान करते हुए स्वीकार किया है कि ब्रह्म के एकत्व को स्वीकार कर लेने मात्र से ही उसे अविद्या का आश्रय व विशय मानने में कोई अनुपपत्ति नहीं होती, चित्स्वभाव ब्रह्म में अज्ञानाश्रयत्व का विरोध नहीं होता, और न ही उसकी सर्वज्ञता बाधित होती है। दृश्टान्त रूप में जैसे अन्धकार अपने आश्रयभूत प्रदेश का आवरण करता है, ठीक उसी प्रकार अविद्या भी आश्रयत्व एवं आवरणत्व से एक ही वस्तु में दोनों कार्यों को सम्पादित कर सकती है।21 अद्वैतवादियों ने कहा है कि यद्यपि ब्रह्म ही अविद्या का आधार है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि ब्रह्म

स्वयं अविद्या से प्रभावित होता है। जिस प्रकार जादूगर अपने जादू से ठगा नहीं जाता उसी प्रकार ब्रह्म भी अविद्या से प्रभावित नहीं होता।22 अविद्या का आश्रय होने पर भी वह ब्रह्म शुद्ध ज्ञानस्वरूप ही नित्य रहता है।

इस प्रसंग में यह शंका प्रकट होती है कि ज्ञान के आश्रय एवं विशय जिस प्रकार भिन्न भिन्न माने जाते हैं, उसी प्रकार अज्ञान के आश्रय तथा विषय को भी पृथक् पृथक् क्यों न माना जाए ?'मैं इसको जानता हूँ' के समान ही ' मैं इसको नहीं जानता' यह अज्ञानात्मक प्रतीति भी तो सार्वजनीन ही है।

इस आशंका के प्रत्युत्तर में प्रकाशात्मयति एवं विवरणप्रमेयसंग्रहकार विद्यारण्य कहते हैं कि आश्रय तथा विशय के भेद की अपेक्षा ज्ञान में होती है। उसका प्रतिशेध करने वाले अज्ञान

शब्द के बल से ऐसी प्रतीति होती है। माया आदि शब्दों का प्रयोग करने पर ऐसी प्रतीति नहीं होती। जिस प्रकार स्थिति कर्मनिरपेक्ष होने पर भी आगमन शब्द से कही जाने पर किसका किंविषयक आगमन है, इस प्रकार कर्मसापेक्ष सी प्रतीति होती है। उसी प्रकार माया अथवा अज्ञान से उच्चारित होने पर आश्रय तथा विशय भेद की अपेक्षा रखनेवाली ज्ञात होती है।23

'यथास्थितिः गमनशब्देन अभिधीयमाना कस्य किंविशयमगमनमिति कर्मसापेक्षवद् भाति तद्वत्'24 इस प्रकार विवरणप्रस्थान के प्रमुख आचार्य अविद्या की ब्रह्माश्रयता तथा ब्रह्मविशयता में ही शंकर की स्वरसता सिद्ध करते हैं।

अविद्या के आश्रय के सम्बन्ध में कतिपय अद्वैतियों ने जीवाश्रयत्व पक्ष को प्रतिपादित एवं परिपुष्ट किया है। विवरणकार तथा वार्तिककार मतावलम्बियों के विपरीत भामतीकार ने अविद्या के आश्रय तथा विषय को भिन्न मानते हुए आश्रय जीव तथा विषय ब्रह्म को स्वीकारा है। जीव को ही अनिर्वचनीय अविद्या का आश्रय मानना उचित है। 'नाऽविद्या ब्रह्माश्रया किन्तु जीवे, सा तु अनिर्वचनीयेत्युक्तं, तेन नित्यशुद्धमेव ब्रह्म।'25 अविद्या को जीवाश्रया स्वीकारने पर अन्योन्याश्रय दोष की कल्पना करना उचित नहीं है क्योंकि अविद्या एवं जीव का सम्बन्ध अनादि प्रवाह वाला है अतः यह दोष प्रसक्ति नहीं होगी। 'अविद्येयं जीवाश्रया, न चान्योन्याश्रयः, अनादित्वादविद्या – जीवतत्सम्बन्धानाम्।'26 वाचस्पति ने भी बीज और अंकुर का उदाहरण देते हुए इसको उपपन्न सिद्ध किया है। 'अनादित्वेन जीवाविद्ययोः बीजांकुरवदवक्लृप्तेरयोगात्'27 तात्पर्य यह है कि जीव और अविद्या के अनादि प्रवाहमान होने के कारण इस आपत्ति का समाधान हो जाता है। इस

स्थिति में अनवस्था दोष की आशंका नहीं करनी चाहिए अपितु इसे प्रामाणिक स्वीकार किया जाना चाहिए जैसे बीज तथा अंकुर के सम्बन्ध में 'अनादि प्रवाह' दोष न होकर प्रामाणिक ही स्वीकार किया जाता है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि आश्रय के सम्बन्ध में शंकर तथा अद्वैतवेदान्त के परवर्ती विद्वानों में पृथक् पृथक् चिन्तन के दर्शन होते हैं। कुछ परवर्ती अद्वैती यद्यपि अविद्या के आश्रय के रूप में ब्रह्म को अंगीकार करके अपनी युक्तियों से इसे उचित सिद्ध करने का प्रयास करते दिखाई देते हैं। परन्तु इन समस्त तर्कों व परिस्थिति का अवलोकन करके हम कह सकते हैं कि वाचस्पति मिश्र जिस प्रकार अविद्या का आश्रय जीव को मानते हुए आश्रय सम्बन्धी रामानुज की समस्त अनुपपत्ति व असंगति का निराकरण करते हुए समाप्तप्राय कर देते हैं, यह मानना ही उचित है। अन्य मतों की अपेक्षा जीवाश्रयत्व का मत युक्तियुक्त प्रतीत होता है। वास्तव में अविद्या को जीवाश्रित मानने पर बन्ध–मोक्ष की व्यवस्था भी यथाक्रम बनी रहती है तथा ब्रह्म के विद्यास्वभाव बने रहने में भी कोई विसंगति नहीं होती, जबकि विवरण–प्रस्थान के आचार्यों को ब्रह्म को अविद्या का आश्रय स्वीकार करने पर उसके विद्यास्वभाव के परिरक्षण के लिए अतीव क्लिष्ट कल्पना करनी पड़ती है।

1. ब्र0 सू0 शां0 भा0, 1.4.3
2. 2. उपनिषद्
3. तेजोबिन्दूषनिषद्, 6.18 ध
4. 4. मैत्रायणी उप0, 2.1
5. श्रीभाष्य, 1.1.1
6. 6. श्रीभाष्य, 1.1.1
7. भामतीटीका, 1.1.4, पृ0 126
8. 8. भामतीटीका, 1.2.6, पृ0 235
9. संक्षेप शारीरक प्प् पृ0 209
10. 10. संक्षेप शारीरक ए पृ0 319
11. अद्वैततत्त्वसुधा, प्र0 सं., पृ0 172
12. 12. श्रीभाष्य, 1.1.1
13. खण्डन खण्डखाद्य, शारदा टीका, पृ045
14. 14. चित्सुखी टीका, मंगलप्रकरण, 4
15. तत्त्वप्रदीपिका
16. 16. कठोपनिषद्, 2.1.13
17. विवेकचूड़ामणि, 112
18. 18. तैत्तिरीय उपनिषद्,
19. बृहदा0 उपनिषद्,
20. 20. विवेकचूड़ामणि, 233
21. प?चपादिका विवरण, पृ0 290
22. 22. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हाःभारतीयदर्शन की रूपरेखा,पृ0 327
23. प?चपादिका विवरण, पृ0 211
24. 24. विवरण प्रमेय संग्रह, पृ0 165
25. भामतीटीका, 1.1.4, पृ0 126
26. 26. अद्वैततत्त्वसुधा, द्वि0भा0प्र0सं0,पृ0 171
27. भामतीटीका, 1.2.6, पृ0 235